2

जातिगत एवं लैंगिक असमानता या विभेद

[INEQUALITY OR DIFFERENTIATION OF CASTE AND GENDER]

"शत-प्रतिशत समानता न तो स्वर्ग में होती है और न नरक में ही। मानवीय समाज तो समानताओं के साथ अनेक विभिन्नताओं या विभेदों के बीच महान है।" —एक दार्शनिक

सामाजिक प्राणी के रूप में मानव की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह अनेक प्रकार के कार्यों को करता है। इन कार्यों के सन्दर्भ में ही उसकी सामाजिक स्थिति का निर्धारण होता है और उसी के अनुसार उसकी समाज में भूमिका भी निश्चित होती है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि समाज में सभी व्यक्ति एक-से कार्य नहीं करते हैं। कारण चाहे इसका कुछ भी रहा हो, परन्तु इस सत्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि व्यक्ति के कार्यों एवं स्थिति में पर्याप्त भिन्नता होती है; अर्थात् सभी व्यक्ति एक से नहीं होते, उनमें पर्याप्त विभेद होते हैं। आदिम या सरल समाजों में चूँकि व्यक्तिगत विभेद का आधार लिंग और आयु आदि ही होता है, अत: विभेद का रूप अति सरल होता है; परन्तु जटिल समाजों में चूँकि सभ्यता और संस्कृति उन्नत स्तर पर होती है, अत: ऐसे समाजों में जाति, व्यवसाय, प्रजाति, धन, धर्म आदि अनेक आधारों पर विभेद विकसित हो जाते हैं। इसी को मोटे तौर पर विभेदीकरण (Differentiation) या सामाजिक विभेदीकरण के नाम से पुकारा जा सकता है; परन्तु समाज में जाति, लिंग, व्यवसाय, धर्म, धन आदि के आधार पर जो विभेद पनप जाते हैं उससे समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव भी पनप जाता है जो कि कालान्तर में भयंकर जटिल सामाजिक समस्या का रूप धारण कर लेता है। प्रस्तुत अध्याय में हम इसी प्रकार की कुछ समस्याओं या विभेदों-जातिगत विभेद और लैंगिक विभेद का अध्ययन करेंगे। लेकिन इस सम्बन्ध में कुछ और अध्ययन करने से पूर्व हम विभेदीकरण का समाजशास्त्रीय अर्थ जानने का प्रयास करेंगे।

विभेदीकरण क्या है ? (What is Differentiation ?)

जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आयु, लिंग, जाति, बुद्धि, व्यक्तित्व, सम्पत्ति, धर्म आदि के आधार पर समाज को अनेक प्रकार के समूहों में विभाजित करने की व्यवस्था को ही मोटे तौर पर विभेदीकरण कहा जाता है। इस सम्बन्ध में यह भी दृष्टव्य है कि इस विभेदीकरण के आधार पर उन समूहों में ऊँच-नीच का भेदभाव भी पनप जाता है।

श्री एफ. लम्ले (F. Lumley) ने विभेदीकरण का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, "विभेदीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति भिन्नताओं या विभेदों का पोषण करते हैं, जिन्हें एक साथ रखने पर आरकेस्ट्रा के विभिन्न वादकों की तरह एक पूर्ण तथा समन्वययुक्त सम्पूर्ण की रचना होती है।"[1]

श्री मार्टिन न्यूमेयर (Martin Neumeyer) ने भी विभेदीकरण की परिभाषा करते हुए लिखा है, "विभेदीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों में प्राणीशास्त्रीय वंशानुसंक्रमण और शारीरिक

1. "By differentiation we mean that process by which individuals cultivate differences, which when put together at the different players in an Orchestra make a fuller and more harmonious whole." —*Fedrick E. Lumley*

Scanned with CamScanner

लक्षणों—आयु, लिंग, प्रजाति, सपिण्डी या व्यक्तिगत, व्यवसायों में अन्तर, सामाजिक पद, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, व्यक्तित्व के अर्जित लक्षण और सिद्धि एवं सामाजिक सम्बन्ध व समूह-संरचना में भेदों के कारण विभेद उत्पन्न होते हैं।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समाज में अनेक आधारों, जैसे लिंग, आयु, जाति आदि के आधार पर समूहों को विभाजित करना और उस आधार पर उनमें ऊँच-नीच का भेदभाव विकसित करना ही मोटे तौर पर विभेदीकरण है। भारतीय समाज में भी आयु, लिंग, जाति, प्रजाति आदि के आधार पर ये विभेदीकरण देखने को मिलते हैं। इस अध्याय में हम केवल '**जातिगत विभेदों**' एवं '**लैंगिक विभेदों**' का अध्ययन करेंगे।

जातिगत विभेद (Caste Differentiation)

भारतीय समाज की संरचनात्मक समस्याओं में एक जटिल समस्या 'जातिगत विभेद' की समस्या है। हम यह जानते हैं कि यह समस्या सदियों से चली आ रही भारतीय जाति-प्रथा से ही सम्बन्धित है। जाति-प्रथा के आधार पर हिन्दू-समाज को अनेकानेक समूहों में विभाजित कर दिया गया है और इसके साथ ही इनमें से प्रत्येक 'जाति' में अनेक भेदभाव और ऊँच-नीच की बातें भी पनपती गई हैं। वास्तविकता तो यह है कि भारतीय जाति-प्रथा अपनी तरह की एक विचित्र और रोचक संस्था है। धर्म की सीमा के बाहर हिन्दुओं का जो कुछ भी अपनापन है, उसकी अनोखी व्यक्तिगत यह जाति-प्रथा है। परन्तु दुर्भाग्य का विषय यह है कि इसी जाति-प्रथा ने भारतीय समाज को अनेक 'जातियों समूहों' में विभाजित कर दिया है। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि विभिन्न 'जातीय समूहों' में परस्पर घृणा, द्वेष, प्रतिस्पर्द्धा, ऊँच-नीच की भावना पनप गई है। इसका परिणाम 'जातिवाद' के रूप में भी सामने आया है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने 'जातीय समूह' के हितों को ही सर्वोपरि समझने लगता है। देश या समाज का हित उसके लिये नगण्य हो जाता है। लेकिन इन 'जातिगत विभेदों' को स्पष्ट रूप से समझने के लिए भारतीय जाति-प्रथा का अर्थ समझना अति आवश्यक है।

जाति-व्यवस्था क्या है ? (What is Caste-System ?)

निश्चित अर्थ में भारत जाति-प्रथा का आगार है। शायद ही यहाँ कोई ऐसा सामाजिक समूह हो जो इसके प्रभाव से अपने को मुक्त रख सका हो। मुसलमान और ईसाई तक भी इसके पंजे में फँस चुके हैं चाहे उनके यहाँ उसका स्वरूप ठीक वैसा न हो जैसा हिन्दुओं में है। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में जाति-प्रथा इतनी जटिल न थी जितनी कि बाद में हुई। समय के परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होता गया और अन्त में यह न केवल जटिल बल्कि विचित्र भी हो गई। आज भारत में लगभग 3000 से अधिक जातियाँ और उपजातियाँ हैं जिनके अध्ययन के लिए, जैसा कि **श्री हट्टन** (Huttan) का कथन है, विशेषज्ञों की एक सेना की आवश्यकता होगी। यही कारण है कि असंख्य विद्वानों ने इस जाति-प्रथा के सम्बन्ध में अनेक गम्भीर विश्लेषण व निष्कर्ष प्रस्तुत करने के प्रयत्न किये हैं। इन विद्वानों में इतिहासकारों का सर्वप्रथम उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने जाति-प्रथा को ऐतिहासिक घटनाओं के साथ जोड़कर विभिन्न युगों में इसमें होने वाले परिवर्तनों पर प्रकाश डाला है। इसके बाद भारतशास्त्रियों (Indologists) ने व्याख्यात्मक रूप में जाति-प्रथा को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इतना ही नहीं, भारतीय जनगणना आयुक्त और अंग्रेज मिशनरियों तक ने भारतीय जाति-प्रथा को अछूता नहीं रखा और अपने-अपने दृष्टिकोण से जाति-प्रथा की विचित्रता और महत्ता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस रूप में स्पष्ट है कि विभिन्न विद्वानों एवं समाज-वैज्ञानिकों ने भारतीय जाति-प्रथा का गहनता से अध्ययन एवं विश्लेषण किया है।

शाब्दिक अर्थ में, अंग्रेजी भाषा का **'Caste'** शब्द पुर्तगाली शब्द **'Casta'** से निकला है जिसका अर्थ जाति, जन्म या भेद होता है। इस अर्थ में जाति-प्रथा प्रजातीय या जन्मगत भेद के आधार पर एक व्यवस्था है।

---

1. "Social differentiation is the process whereby social differences of persons and groups occur, due to biological heredity and physical characteristics—age, sex, race, consanguineous and individual, variations invocations, social status, cultural background and acquired personality traits and accomplishments and differences in group composition and social relationship."
—*Martin Neumeyer*

Scanned with CamScanner

सर हरबर्ट रिजले (Sir Herbert Risley) ने जाति-प्रथा को विस्तृत रूप में परिभाषित करते हुये लिखा है, "जाति परिवारों या परिवारों के समूह का एक संकलन है जिसका कि एक सामान्य नाम है, जो एक काल्पनिक पूर्वज, मानव या देवता से एक सामान्य वंश-परम्परा या उत्पत्ति का दावा करते हैं, एक ही परम्परात्मक व्यवसाय को करने पर बल देते हैं और एक सजातीय समुदाय के रूप में उनके द्वारा मान्य होते हैं।"[1]

डॉ. एन. के. दत्ता (N. K. Dutta) ने जाति को छः प्रमुख आधारों पर समझाया है—(1) एक जाति के सदस्य जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते, (2) प्रत्येक जाति में दूसरी जातियों के साथ खाने-पीने के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ प्रतिबन्ध होते हैं, (3) अधिकतर जातियों के पेशे निश्चित होते हैं, (4) जातियों में परस्पर एक ऊँच-नीच का संस्करण है, जिसमें ब्राह्मण जाति की स्थिति सर्वमान्य रूप से सबसे ऊपर है, (5) जन्म ही एक व्यक्ति की जाति को जीवन-पर्यन्त निश्चित करता है; केवल जाति के नियम को तोड़ने पर उसे जाति से बहिष्कृत किया जा सकता है, नहीं तो एक जाति से दूसरी जाति में जाना सम्भव ही नहीं है, (6) सम्पूर्ण व्यवस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर निर्भर है।"[2]

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह अंतिम रूप में कहा जा सकता है कि **जाति-प्रथा मुख्यतः जन्म के आधार पर सामाजिक संस्तरण और खण्ड-विभाजन की वह गतिशील व्यवस्था है जो खाने-पीने, विवाह, पेशा और सामाजिक-सहवास के सम्बन्ध में अनेक या कुछ प्रतिबन्धों या विभेदों को जाति के सदस्यों पर लागू करती है।**

परम्परागत जातिगत विभेद (Traditional Caste-Differentiations)

जाति-प्रथा के उपर्युक्त विवेचन से कम-से-कम दो बातें स्पष्ट रूप से सामने आती हैं—एक तो यह है कि जाति-प्रथा जन्म पर आधारित ही एक व्यवस्था है; अर्थात् इस व्यवस्था में जाति की सदस्यता जन्म से ही निश्चित हो जाती है जिसे कि एक जाति का सदस्य जीवन की अंतिम साँस तक नहीं बदल सकता। जाति के सम्बन्ध में दूसरी प्रमुख बात यह है कि यह व्यवस्था एक जाति और दूसरी जाति में ऊँच-नीच का भेदभाव भी उत्पन्न करती है और इसी कारण विभिन्न जातियों में विभिन्न प्रकार के विभेद भी लागू हो जाते हैं। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इन जातिगत विभेदों में से अनेक की प्रकृति अब परम्परागत बनकर रह गई है, जबकि कुछ विभेद अब भी व्यावहारिक रूप में पाये जाते हैं। फिर भी सामाजिक समस्या की जटिलता को देखते हुए इन विभेदों का वर्णन करना उचित होगा—

(1) समाज का खण्डात्मक विभाजन (Segmental Division of Society)—जन्म के आधार पर सामाजिक विभेदीकरण की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति जातिगत विभेदीकरण है। परम्परागत भारतीय समाज में इस विभेदीकरण का प्रभाव इतना विस्तृत था कि बाहर से आकर बस जाने वाले विदेशी समूह, जैसे मुसलमान, ईसाई आदि भी इसके प्रभाव से अपने को पूर्णतया विमुक्त न रख सके। परम्परागत रूप में जातिगत विभेदीकरण के अन्तर्गत ब्राह्मणों की स्थिति सर्वमान्य रूप में सबसे ऊँची है और उसके बाद क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों का स्थान है। कालान्तर में इन चार प्रमुख जातियों के बीच असंख्य उपजातियाँ पनप गईं और उनमें आपस में एक ऊँच-नीच का विभेदीकरण हो गया। जातिगत त्रिभेदीकरण यह रूप भारतीय समाज में अति कटु रहा है। ब्राह्मण लोगों की स्थिति सर्वमान्य रूप में सबसे ऊपर होने के कारण वे अनेक प्रकार के विशेषाधिकारों का प्रयोग करते थे। विशेषकर 'धर्म' का सहारा लेकर ये लोग अन्य जातियों का अनेक प्रकार से शोषण करते देखे गये हैं। जातिगत विभेदों का सबसे अधिक प्रभाव 'शूद्र' जातियों पर देखा गया है जिनको कि ब्राह्मण व क्षत्रियों के नाना प्रकार के अत्याचारों का शिकार होना पड़ता था और नारकीय जीवन बिताना पड़ता था। आज भी गाँवों में स्थिति दयनीय है।

1. "Caste is a collection of families or group of families hearing a common name, claiming a common decent from a mythical ancestor, human or divine, professing to follow the same hereditary calling, and regarded by those who are competent to give an opinion as forming a single homogeneous community."
—Sir Herbert Risley, *The People of India*, London, 1915, p. 5.

2. N. K. Dutta, *Origin and Growth of Caste in India*, Vol. I, The Book Co., 1931, p. 3.

Scanned with CamScanner